पयप्पार श्री धर्मसस्था मंदिर ए. कॉम.

बनाम

ए.के. जोसेफ व अन्य

(सिविल अपील नम्बर 4138/2009)

7 जुलाई, 2009

[ऐसे.बी.सिन्हा व डॉक्टर मुकुंदकम शर्मा, न्यायाधिपतिगण]

ट्रावनकोर कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950: धारा 27 - मंदिरों का प्रबन्धन - प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा मंदिर की सम्पत्तियों में अपने अधिकारों की घोषणा की डिक्री वर्ष 1958 में एक वाद दायर करके प्राप्त की, जिसमें मण्डल को पक्षकार नहीं बनाया गया था - मण्डल द्वारा वर्ष 1998 में मंदिर की सम्पत्तियों का स्वामी होने का दावा करते हुए वाद दायर किया गया - प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पूर्व में प्राप्त डिक्री को ध्यान में रखते हुए खारिज किया गया - अभिनिर्धारित - वर्ष 1958 में पारित डिक्री मण्डल के विरूद्ध बाध्यकारी और प्रभावी नहीं थी क्योंकि यह एक आवश्यक पक्षकार था और उसे पक्षकार नहीं बनाया गया - उच्च न्यायालय ने साक्ष्य

का मूल्यांकन नहीं किया - मामला उच्च न्यायालय को नये सिरे से विचार करने के लिए प्रतिप्रेषित किया गया - उच्च न्यायालय कार्यवाही का शीघ्रता से निस्तारण करेगा।

ट्रावनकोर देवास्वम मण्डल का गठन मंदिर अपीलार्थी की सम्पत्ति के प्रबन्धन की देखभाल करने के लिए किया गया था। अपीलार्थी, मण्डल द्वारा गठित एक निकाय था। मंदिर के पास बहुत बड़े हिस्से की भूमि थी। भूमि के कुछ हिस्से पर कथित रूप से प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती ने अतिक्रमण कर लिया था। वर्ष 1958 में प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती ने वादाधीन भूमि में अपने अधिकारों की घोषणा का एक वाद पेश किया था। उस वाद में, मण्डल को पक्षकार नहीं बनाया गया था।

विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया, जिसे चुनौती नहीं दी गई थी। वर्ष 1998 में मण्डल ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरूद्ध वादाधीन भूमि से बेदखली का एक वाद पेश किया था किन्तु प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में पूर्व में पारित डिक्री के मद्देनजर विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया। मण्डल ने विचारण न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील प्रस्तुत की। मंदिर की तरफ से प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा कथित रूप से किए गए अतिचार के संबंध में ट्रावनकोर कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 के तहत उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षी शक्तियों का आह्वान करते हुए एक शिकायत दायर की गई। चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष दो कार्यवाहियां

लंबित थी, एक पर्यवेक्षी शक्तियों का प्रयोग और विचारण न्यायालय के आदेश के विरूद्ध अपील, दोनों की सुनवाई एक साथ की गई।

अभिलेखों से पता चला कि वर्ष 1929 में राज्य सरकार ने वादाधीन भूमि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती के पक्ष में हस्तांतरित कर दी थी किन्तु वर्ष 1931 में राज्य सरकार ने स्थिति में सुधार किया तथा भूमि अंतरण करने के वर्ष 1929 के पूर्व के आदेश को अपास्त कर दिया। इसे प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती ने वर्ष 1998 में केवल राज्य सरकार को पक्षकार बनाते हुए वाद प्रस्तुत कर चुनौती दी, जिसमें मंदिर प्राधिकारियों को पक्षकार नहीं बनाया गया था। मुंसिफ न्यायालय द्वारा इस आधार पर वाद को डिक्री किया गया कि दीवान को आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार नहीं था।

उच्च न्यायालय ने 1950 के अधिनियम के तहत पर्यवेक्षी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए यह आदेश दिया कि तहसीलदार एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा। प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन के आधार पर, उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को यह आदेश दिया कि अनाधिकृत कब्जाधारियों को बेदखल कर दिया जाए। प्रत्यर्थी संख्या 1 को बेदखल करने के बाद सम्पत्ति मण्डल को सुपुर्द कर दी गई थी।

अपीलार्थी ने वर्तमान अपील इस न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत करते हुए पेश की है कि अधीनस्थ न्यायालयों ने दस्तावेजात पर गौर नहीं किया

तथा प्रत्यर्थी नम्बर 1 की और से प्रस्तुत वाद को केवल इस आधार पर डिक्री किया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पेश पूर्व का वाद उसके पक्ष में डिक्री कर दिया गया था, किन्तु इस तथ्य को दरकिनार कर दिया कि उस वाद में अपीलार्थी या मण्डल पक्षकार नहीं बनाए गए थे तथा, इसलिए वह डिक्री मण्डल एवं मंदिर के प्राधिकारियों के विरूद्ध ना तो बाध्यकारी थी ना ही प्रभाव में थी।

प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपील का यह तर्क प्रस्तुत करते हुए विरोध किया कि यह इसलिए पोषणीय नहीं थी क्योंकि मण्डल द्वारा प्रस्तुत पूर्व की ऐसएलपी देरी के आधार पर खारिज कर दी गई थी।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए तथा मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

1.1. ट्रावनकोर कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 के लागू होने के बाद श्री पद्मनाभस्वामी मंदिर को छोड़कर, मंदिरों का तथा उनकी सभी संपतियों और निधियों का प्रशासन त्रावणकोर मण्डल में निहित हो गया। अधिनियम की धारा 27 यह कहती है कि राजस्व रिकॉर्ड में देवस्वोम संपत्ति के रूप में दर्ज या वर्गीकृत अचल संपत्तियां, जो 12 अप्रैल, 1922 से प्रभावी रूप से देवस्वोम के कब्जे या उपभोग में हैं, उन्हें देवस्वोम संपत्तियों के रूप में निपटाया जाएगा। मण्डल द्वारा प्रस्तुत किये गये वाद में वादग्रस्त सम्पत्ति से संबंधित बहुत सारे दस्तावेजात अभिलेख पर रखे गये

थे परन्तु उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मण्डल ऐसे कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सका, जिससे यह दर्शाया जा सके कि अनुसूचित सम्पत्तियां मण्डल से संबंधित हैं। [पैरा 13 व 14]

1.2 विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने मण्डल द्वारा दायर वाद को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज किया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने वर्ष 1980 में वाद प्रस्तुत करके स्वयं के पक्ष में एक डिक्री प्राप्त कर ली थी किंतु वह वाद प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा वर्ष 1958 में केवल राज्य सरकार के विरूद्ध प्रस्तुत किया गया था। मण्डल ने वादाधीन संपत्ति का, जो वाद की विषयवस्तु थी, मालिक होने का दावा किया तथा, इसलिए मण्डल एक आवश्यक पक्षकार था। चूंकि मण्डल को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया तथा डिक्री केवल राज्य सरकार के विरुद्ध प्राप्त की गई थी, इसलिए, वह डिक्री अधिक से अधिक राज्य के खिलाफ बाध्यकारी होगी और मण्डल के खिलाफ नहीं। उच्च न्यायालय ने मात्र इस आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय की पुष्टि कर दी कि प्रत्यर्थी नम्बर 1 के पक्ष में वर्ष 1958 में प्रस्तुत वाद में पहले से ही डिक्री पारित की जा चुकी है किन्तु ऐसा करते समय उच्च न्यायालय ने उसी उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्व के निर्णय को तथा प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा मंदिर की भूमि पर अतिक्रमण करने के संबंध में तहसीलदार के प्रतिवेदन को अनदेखा कर दिया। [पैरा 15]

1.3. 1950 के अधिनियम की धारा 27 की उच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या भी गलत थी। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा मण्डल की ओर से प्रस्तुत वाद को खारिज करने के आदेश को मुख्य रूप से दो आधारों पर बहाल रखा था, यथा कि वर्ष 1958 में प्रस्तुत वाद में पारित डिक्री, जो कि उच्च न्यायालय के अनुसार अंतिम व बाध्यकारी थी तथा ट्रावनकोर कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 की धारा 27 की व्याख्या पर, जो कि गलत व्याख्या थी, विशेष तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा तथ्यों के यह निष्कर्ष निकाले जाने पर कि मण्डल द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की जा सकी कि उसका प्रश्नगत तिथि को सम्पत्ति पर कब्जा था। [पैरा 16]

2. यह वास्तव में सही है कि मण्डल द्वारा ऐसएलपी दायर की गई थी, जिसे मियाद बाहर मानते हुए खारिज कर दिया गया था। अपीलार्थी एक कानूनी इकाई है क्योंकि इसका गठन मण्डल की और से जारी की गई उपविधियों के तहत किया गया था। वर्तमान अपील दायर करते समय, अपीलार्थी ने यह कहा था कि इस अपील को दायर करने में उसका हित केवल मण्डल की संपत्तियों को अतिक्रमणकारियों से बचाना है और यह देखना है कि मंदिरों और धार्मिक पूजाओं से संबंधित भूमि के साथ छेड़छाड़ न की जाए और त्रावणकोर कोचीन हिंदू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 के प्रावधानों का, जिसका हित और उद्देश्य देवास्वोम संपत्तियों की रक्षा

करना है, प्रभावी कार्यान्वयन भी किया जाए। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 27.02.2006 को एक आदेश पारित किया गया था जब ऐसएलपी दायर करने की अनुमति दी गई थी और, इसलिए अधिकार क्षेत्र के उक्त प्रश्न को इस न्यायालय के समक्ष दुबारा नहीं उठाया जा सकता है। [पैरा 17 व 18]

गुरप्रीत सिंह भुल्लर बनाम भारत संघ **(2006) 3 ऐससीसी 758**; जसबीर सिंह बनाम विपिन कुमार जग्गी **(2001) 8 ऐससीसी 289**; राजू रामसिंह वसावे बनाम महेश देवराव भिवापुरकर **(2008) 9 ऐससीसी 54**, पर निर्भर किया गया।

3. उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पूर्व की डिक्री अपीलार्थी पर तथा मण्डल पर बाध्यकारी होने के तथ्य एवं ट्रावनकोर कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम 1950 की धारा 27 की व्याख्या के आधार मात्र पर पारित किया था। उच्च न्यायालय के दोनों दृष्टिकोण गलत थे तथा उच्च न्यायालय द्वारा उन पर पुनः विचार करने की आवश्यकता थी। सभी सुसंगत दस्तावेजात पर, जिनमें राजस्व अभिलेख भी शामिल हैं, गौर करने के बाद यह पाया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया गया। उन अभिलेखों की उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखी नहीं की जानी चाहिए थी क्योंकि वह प्रथम अपीलीय न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था और, इसलिए उच्च न्यायालय ने कानून की ऐसी प्रकट त्रुटि की, जो अभिलेख को देखने मात्र

से ही स्पष्ट थी। मामला उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया। चूंकि मामला पुराना है, उच्च न्यायालय को निवेदन किया जाता है कि वह कार्यवाहियों का निपटारा जितनी जल्दी संभव हो सके, करें। [पैरा 20, 21 व 22]

केस कानून संदर्भ:

(2006) 3 ऐसेसीसी 758, पैरा 17 पर निर्भर किया गया

(2001) 8 ऐसेसीसी 289, पैरा 18 पर निर्भर किया गया

(2008) 9 ऐसेसीसी 54, पैरा 19 पर निर्भर किया गया

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील नम्बर 4138/2009

केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के ए ऐस संख्या 298/2002 में दिनांक 18.05.2004 को पारित निर्णय व आदेश से।

मथाई एम. पैडीडे, शिशिर पिनाकी व संजय जैन अपीलार्थीगण की और से।

ऐस. उदय कुमार सागर, बीना माधवन, श्वेतांक सिल्कवाल (लायॅर्स निट एण्ड कम्पनी की ओर से), आर. सथीस, एम.पी. विनोद, दिलीप पिल्लई व अजय के. जैन प्रत्यर्थीगण की और से।

न्यायालय का निर्णय **न्यायाधिपति डॉक्टर मुकुंदकम शर्मा** द्वारा सुनाया गया।

1. अनुमति दी जाती है।

2. वर्तमान अपील मौजूदा अपीलार्थी द्वारा केरल उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा पारित निर्णय दिनांक 18.05.2004 की वैधता को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें न केवल 1996 के टीडीबी नंबर 38 में प्रस्तुत 2001 की सी.एम.पी. संख्या 1118 को खारिज कर दिया गया है, बल्कि 1998 के ओऐस नंबर 37 से उत्पन्न 2002 की अपील एऐस नंबर 298 को भी खारिज किया गया है।

3. 1996 के टीडीबी नंबर 38 में, त्रावणकोर देवस्वोम मण्डल (इसके बाद "मण्डल") ने आरोप लगाया कि सम्पत्ति, जो 1998 के ओऐस नंबर 37 में वाद अनुसूचित संपत्ति थी, त्रावणकोर देवस्वोम मण्डल की है और उस पर अवैध रूप से कब्ज़ा कर लिया गया था और उस पर अतिक्रमियों का कब्ज़ा था। उक्त वाद अतिक्रमणकारियों को हटाने के लिए दायर किया गया था।

4. इससे पहले, त्रावणकोर देवास्वोम मण्डल ने अतिक्रमियों (प्रत्यर्थियों) को बेदखल करने के लिए एक मुकदमा दायर किया था, जिसे 1998 के ओऐस नंबर 37 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त मुकदमे

का प्रत्यर्थियों ने विरोध किया था। हालाँकि, उपरोक्त मुदकमा अंततः खारिज कर दिया गया।

5. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर मण्डल द्वारा केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील दायर की गई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया था कि वादग्रस्त अनुसूचित संपत्ति उसकी है और प्रत्यर्थी संख्या 1 उस पर अवैध रूप से काबिज था और उसने प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरूद्ध बेदखली आदेश के लिए प्रार्थना की थी। चूंकि 1996 के टीडीबी नंबर 38 में 2001 की सीएमपी नंबर 1118 मुंसिफ न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लंबित थी, उच्च न्यायालय को उस दूसरी कार्यवाही, यानि 2002 की एऐस संख्या 298 का उसी सम्पत्ति के बारे में उच्च न्यायालय में लंबित होने का पता चलने पर, उच्च न्यायालय ने अपीलीय अदालत से उक्त कार्यवाही वापस ले ली और दोनों मामलों को एक साथ तय करने के लिए आगे बढे। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय द्वारा विशेष रूप से प्रदर्श बी 5 के मद्देनजर मण्डल द्वारा पेश वाद को खारिज करना उचित था। यह दर्ज करने के बाद कि संपत्ति मण्डल की नहीं थी और यह वास्तव में प्रत्यर्थी नंबर 1 की थी, यह अधिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी नंबर 1 को बाद के सर्वेक्षण के आधार पर गलत तरीके से बेदखल किया गया था और इसलिए संपत्ति का कब्जा प्रत्यर्थी संख्या 1 को सौंपने का निर्देश जारी किया गया था।

6. उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर मण्डल द्वारा इस न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका संख्या 15250/2005 (सीसी संख्या 6642/2005) दायर की गई थी, जिसे अत्यधिक देरी के आधार पर खारिज कर दिया गया था। वर्तमान अपील मंदिर सलाहकार समिति द्वारा उच्च न्यायालय के पूर्वोक्त फैसले के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें अन्य बातों के अलावा, यह तर्क दिया गया है कि मण्डल को अपनी संपत्ति की रक्षा करने में कोई दिलचस्पी नहीं है और, इसलिए उपरोक्त ऐसएलपी सीमा अवधि की समाप्ति के बाद आकस्मिक रूप से दायर की गई थी, जिस कारण मंदिर की अचल संपत्ति का बड़ा हिस्सा तीसरे पक्ष के पास गया, जिससे मंदिर के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस न्यायालय ने ऐसएलपी के साथ-साथ देरी की माफी की मांग करने वाले आवेदन और अंतरिम राहत के आवेदन पर भी नोटिस जारी किया। परिणामस्वरूप मामला अंतिम सुनवाई के लिए हमारे सामने सूचीबद्ध किया गया, जिस पर हमने पक्षकारों की और से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना।

7. हालाँकि, इससे पहले कि हम संबंधित पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर ध्यान दें, उन कुछ तथ्यों का उल्लेख कर सकते हैं, जिस कारण यह अपील दायर हुई है, ताकि हम पक्षकारों की दलीलों पर प्रभावी ढंग से विचार करने में सक्षम हो सकें। पयप्पार श्री धर्मसस्था मंदिर को एक बड़े भूभाग पर बसाया गया था,

जो मंदिर के बेहतर प्रबंधन के लिए आवश्यक था। मंदिर की संपत्ति के प्रबंधन की देखभाल के लिए एक मण्डल का गठन किया गया था, जो कि अपीलार्थी है। अपीलार्थी, मण्डल द्वारा जारी उपविधियों के अनुसार विधिवत गठित एक निकाय है। मंदिर से सटी बहुमूल्य संपत्ति के बड़े हिस्से पर कुछ लोगों द्वारा अतिक्रमण किया गया था और उसमें से 1.85 एकड़ की सीमा पर प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती द्वारा कथित तौर पर अतिक्रमण किया गया था। जब मंदिर की पहल पर प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती को बेदखल करने के आदेश जारी किए गए थे, वर्ष 1958 में मुंसिफ की अदालत में उसके द्वारा एक मुकदमा दायर किया गया था, जिसमें संपत्ति में वादी के अधिकारों की घोषणा करने वाली डिक्री की प्रार्थना की गई थी और विकल्प के रूप में एक घोषणा चाही गई थी कि राज्य को वादी की बेदखली से पहले सुधार के मूल्य का भुगतान करना चाहिए। उक्त मुकदमें में, मण्डल को इस आधार पर एक पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया था कि मण्डल ने संपत्ति पर अनाधिकृत कब्ज़ा कर रखा था। उक्त मुकदमे में वादी के पक्ष में एक डिक्री पारित की गई थी। मण्डल को उक्त डिक्री के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। यहां तक कि राज्य ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त डिक्री के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की।

8. वर्ष 1998 में, मण्डल ने उपरोक्त वादग्रस्त संपत्ति से प्रत्यर्थी संख्या 1 को बेदखल करने के लिए मुंसिफ कोर्ट में प्रत्यर्थी संख्या 1 के

खिलाफ एक दावा दायर किया। हालाँकि, उपरोक्त मुकदमे को न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दिया था कि उक्त दावा प्रत्यर्थी द्वारा पहले से दायर मुकदमे में पारित डिक्री के मद्देनजर चलने योग्य नहीं था। मण्डल द्वारा पूर्वोक्त निर्णय के विरूद्ध अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क देते हुए अपील की गई थी कि विद्वान मुंसिफ, प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा वर्ष 1958 में दायर पहले के मुदकमे के संबंध में किए गए धोखाधड़ी और मिलीभगत पर विचार करने में विफल रहा और उक्त मुकदमें में डिक्री मण्डल की पीठ पीछे प्राप्त की गई थी और यह कि मण्डल पहले के मुदकमे के दाखिल और निस्तारण दोनों तथ्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ था। यह भी तर्क दिया गया कि विद्वान मुंसिफ, त्रावणकोर कोचीन हिंदू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 (इसके बाद "1950 अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 27 के आशय को समझने में विफल रहा। असल में अपीलार्थी मंदिर की नवीनीकरण समिति के सचिव द्वारा 1950 अधिनियम के तहत उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षी शक्तियों का आह्वान करते हुए एक शिकायत की गई थी, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 पर अतिक्रमण का आरोप लगाया गया था। इसे 1996 के टीडीबी नंबर 38 के रूप में क्रमांकित किया गया था। चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष दो कार्यवाहियां, अर्थात् 1996 का टीडीबी नंबर 38 और उच्च न्यायालय से पर्यवेक्षी शक्तियों के इस्तेमाल के लिए मण्डल द्वारा विचारण न्यायालय के वाद खारिज करने के निर्णय के विरूद्ध अपील न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई अपील, लंबित थी। उक्त अपील को

उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया गया और इसे 1996 के टीडीबी नंबर 38 के साथ सुनने का आदेश दिया गया। उपरोक्त मामलों को उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा सुनवाई के लिए एक साथ लिया गया था किन्तु उपरोक्त अपील और 1996 की टीडीबी संख्या 38 को उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा एक सामान्य आदेश पारित करके खारिज कर दिया था, जो वर्तमान अपील का विषय है।

9. हमारे सामने रखे गए अभिलेख से पता चलता है कि राज्य सरकार ने दिनांक 21.06.1929 को थॉम्मन कुरुविला को 1 एकड़ 85 सेंट भूमि हस्तांतरित करने का आदेश पारित किया था। उक्त आदेश को प्रदर्श डी 4 के रूप में अभिलेख पर भी रखा गया था। इसके बाद, हालाँकि राज्य सरकार ने दिनांक 11.05.1931 को एक दूसरा आदेश प्रदर्श डी 5 पारित किया, जिसमें पिछले आदेश दिनांक 21.06.1929 को अपास्त करके स्थिति में सुधार करते हुए 1 एकड़ 85 सेंट भूमि थोम्म्न कुरुविला को हस्तान्तरित कर दी किन्तु राज्य सरकार द्वारा पारित दूसरे आदेश दिनांक 11.05.1931 को वादी (थॉम्मन कुरुविला) ने 1998 के ओऐसे नंबर 53 नंबर में चुनौती दी थी, जिसमें केवल राज्य सरकार को एक पक्षकार बनाया गया था तथा मंदिर के अधिकारियों, यानि कि पयप्पार श्री धर्मसस्था मंदिर को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था। उक्त वाद में न्यायालय ने एक निषेधाज्ञा जारी की थी, जिसके द्वारा राज्य सरकार को प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती

अर्थात् वादी को बेदखल करने से रोका गया था। मुंसिफ की अदालत ने बाद में वादी, यानि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती के पक्ष में इस आधार पर वाद को डिक्री किया था कि दीवान, जिसने दिनांक 11.05.1931 को आदेश प्रदर्श डी 5 जारी किया था, उसे ऐसा आदेश जारी करने का क्षेत्राधिकार नहीं था। उच्च न्यायालय ने, जिसने 1950 के अधिनियम के तहत एक पर्यवेक्षी शक्ति का प्रयोग किया था, यह निर्देश दिये थे कि तहसीलदार मिनाचिल तालुक द्वारा उस संपत्ति के क्षेत्रफल तथा अन्य विवरणों बाबत, जो कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास थी, एक प्रतिवेदन पेश किया जायेगा। दिनांक 18.09.1997 को तहसीलदार मिनाचिल ने केरल उच्च न्यायालय के समक्ष संपत्ति के सम्बन्ध में एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। दिनांक 24.10.1997 को उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को संपत्ति में अवैध कब्जेदारों को बेदखल करने का आदेश दिया था। दिनांक 13.11.1997 को प्रत्यर्थी नंबर 1 जोसेफ व अन्य अतिक्रमियों को बेदखल करने के पश्चात् संपत्ति मण्डल को सौंप दी गई थी और इस तरह की बेदखली के बाद सहायक देवास्वम आयुक्त का संपत्ति पर कब्जा है। दिनांक 21.11.1997 को केरल उच्च न्यायालय द्वारा राजकीय अधिवक्ता की और से प्रस्तुत ज्ञापन का संदर्भ देते हुए आदेश पारित किया गया कि लालोम गांव के ब्लॉक 21 के सर्वेक्षण संख्या 383/3 में संपत्ति पर अतिक्रमण करने वालों को बेदखल कर दिया गया है तथा दिनांक 13.11.1997 को पयप्पार श्री धर्मसस्था मंदिर को कब्जा बहाल कर दिया गया है तथा मण्डल मंदिर में

बिना देरी किये आवश्यक नवीनीकरण कार्य करेगा। इस बीच प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा उपरोक्त वर्णित अनुसार मुंसिफ न्यायालय में एक वाद पेश किया गया है, जिसे वाद संख्या 378/1998 के रूप में पंजीकृत किया गया है।

10. वर्तमान अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील यह कहते हुए दायर की है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय भी अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजों पर विचार करने में विफल रहे और प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर वाद को केवल इस आधार पर डिक्री किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 पूर्वोत्तर द्वारा पूर्व में दायर वाद उसके पक्ष में डिक्री किया गया था, लेकिन इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया था कि उक्त वाद में वर्तमान अपीलार्थी या मण्डल को पक्षकार नहीं बनाया गया था और, इसलिए उक्त डिक्री मण्डल और मंदिर प्राधिकारियों या समिति के खिलाफ न तो बाध्यकारी थी और न ही प्रभावी थी। इस अपील में अपीलार्थी द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 17.08.1949 की अवधि के राजस्व रजिस्टर जैसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों प्रदर्श ए 6 और प्रदर्श ए 7 के साथ-साथ अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों जैसे कि प्रदर्श ए 10 की तरफ, जो कुथकापट्टम रजिस्टर है, ध्यान न देकर गलती की है।

11. प्रत्यर्थी नंबर 1 ने, हालांकि, उपरोक्त अपील का विरोध करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ तर्क दिया कि वर्तमान अपील पोषणीय नहीं है

क्योंकि मण्डल द्वारा पूर्व में दायर 2005 की विशेष अनुमति याचिका संख्या 15250 (2005 की सीसी संख्या 6642) को दिनांक 20.07.2005 को खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी के पास वर्तमान अपील को प्रस्तुत करने का वैध अधिकार नहीं था क्योंकि यह मण्डल द्वारा जारी उपविधियों के अनुसार मण्डल द्वारा गठित केवल पयप्पार श्री धर्मसस्था मंदिर की सलाहकार समिति है। चूंकि मण्डल द्वारा दायर पूर्व की ऐसएलपी पहले ही खारिज कर दी गई है, इसलिए मण्डल द्वारा गठित कोई भी निकाय अपनी अलग कार्यवाही नहीं चला सकता है। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया कि मण्डल 1998 के ओ.ऐस. नंबर 37 में वादी था और मालिक भी था और, इसलिए मण्डल को अपीलार्थी को अतिरिक्त वादी के रूप में शामिल करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया था कि यदि वर्तमान अपील पर विचार किया जाता है और स्वीकार कर ली जाती है तो इसका प्रभाव यह होगा कि मण्डल और प्रत्यर्थी संख्या 1 के बीच अदालत द्वारा पारित डिक्री, जो अंतिम रूप प्राप्त कर चुकी है, रद्द हो जाएगी और वर्तमान अपीलार्थी, जो ना मूल वादी है, ना ही डिक्री के अंतिम होने से पहले मुकदमे के किसी भी चरण में अतिरिक्त वादी के रूप में पक्षकार बनाया गया, उसे डिक्री प्रदान कर दी जाएगी। इस बात से भी इनकार किया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 एक अतिचारी था और उपरोक्त

संपत्ति दिनांक 21.06.1929 को ऑगस्टली मथाई द्वारा उसके पक्ष में सौंपी गई थी।

12. हालाँकि, उक्त आदेश दिनांक 11.05.1931 के बाद के आदेश द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस बीच, वर्की वर्की नामक व्यक्ति ने उक्त जमीन उक्त ऑगस्टी मथाई से खरीदी। प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती, थॉम्मन कुरुविला ने उपरोक्त संपत्ति वर्की वर्की से खरीद ली। यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता थॉम्मन कुरुविला ने जमीन पर लगातार कब्जा कर रखा था, मानो वह मालिक हो। वर्ष 1957 में ही राज्य सरकार ने थॉम्मन कुरुविला को संपत्ति से बेदखल करने के लिए भूमि संरक्षण अधिनियम, 1957 के तहत एलसी 65 और 66 के रूप में कार्यवाही शुरू की। मण्डल वर्ष 1998 तक किसी भी समय किसी भी दावे के साथ आगे नहीं आया, जब तक उसने 1998 का ओऐस संख्या 37 दायर नहीं किया। चूंकि राज्य द्वारा 1957 के एलसी 65 और 66 के तहत बेदखली की कार्यवाही शुरू की थी, तब प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता थॉम्मन कुरुविला ने 1958 की ओऐस संख्या 53, अतिरिक्त मुंसिफ कोर्ट, मीनाचिल के समक्ष राज्य की कार्रवाई के खिलाफ दायर की, जिसमें उपरोक्त 1.85 एकड़ संपत्ति पर अपने स्वामित्व की घोषणा और एक स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की गई थी। यह भी तर्क दिया कि उस मुकदमे में मण्डल को शामिल करने में विफलता ऐसी परिस्थितियों में हुई, क्योंकि अकेले राज्य को

मालिक के रूप में पेश किया गया था और माना जाता था कि वह मालिक है। प्रत्यर्थी संख्या 1 के पूर्ववर्ती द्वारा दायर 1958 के ओऐस 53 में दिनांक 30.10.1959 को फैसला सुनाया गया था कि दीवान के पास समनुदेशन को रद्द करने की कोई शक्ति नहीं थी। यह भी आरोप लगाया गया था कि तिरुविथमकुर देवास्वोम एक वैधानिक निकाय है, जो केवल 1950 के अधिनियम द्वारा अस्तित्व में आया था और इससे पहले सरकार और देवस्वोम एक ही थे और उनका कोई अलग अस्तित्व नहीं था और, इसलिए सरकार द्वारा वर्ष 1950 से पहले वादग्रस्त भूमि के संबंध में जो भी आदेश पारित किया गया था, वह मण्डल पर भी बाध्यकारी था। यह भी तर्क दिया गया कि 1950 अधिनियम की धारा 27 देवास्वोम के अस्तित्व में आने से पहले सरकार द्वारा किए गए किसी भी समनुदेशन को रद्द नहीं करती है।

13. उपरोक्त दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए हमने उपरोक्त अधिनियम 1950 के प्रावधानों का भी अध्ययन किया है, जिसका संदर्भ हमारे समक्ष उपस्थित पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा किया गया था। 1950 के अधिनियम के लागू होने के बाद श्री पद्मनाभस्वामी मंदिर को छोड़कर, मंदिरों का तथा उनकी सभी संपतियों और निधियों का प्रशासन त्रावणकोर मण्डल में निहित हो गया।

अधिनियम की धारा 27 इस प्रकार है:

"देवास्वोम संपत्तियां: देवस्वोम वागा या देवस्वोम पोरम्बोके के रूप में राजस्व अभिलेख में दर्ज या वर्गीकृत अचल संपत्तियां और ऐसी अन्य पंडारावगा भूमियां, जो 12 अप्रेल 1922 के अनुरूप 30 वीं मीनम 1097 के बाद अनुसूची 1 में उल्लेखित देवस्वोम्स के कब्जा या उपयोग में है, देवस्वोम्स सम्पत्तियों के रूप में निपटा जाएगा। भूमि संरक्षण अधिनियम, 1091 (1091 का IV) के प्रावधान सरकारी भूमि के मामले में देवस्वोम भूमि पर भी लागू होंगे।"

14. उपरोक्त प्रावधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि राजस्व रिकॉर्ड में देवस्वोम संपत्ति के रूप में दर्ज या वर्गीकृत अचल संपत्तियां, जो 12 अप्रैल, 1922 से प्रभावी रूप से देवस्वोम के कब्जे या उपभोग में हैं, उन्हें देवस्वोम संपत्तियों के रूप में निपटाया जाएगा। मण्डल द्वारा दायर वाद में कई दस्तावेज़ात अर्थात प्रदर्श ए 6 तथा ए 7 अभिलेख पर रखे गए थे, जो कि दिनांक 17.08.1949 की अवधि के लिए राजस्व रजिस्टर और साथ ही अन्य प्रासंगिक दस्तावेज जैसे प्रदर्श ए-10, जो कुथकपट्टम रजिस्टर था, जो कि प्रश्नगत भूमि से संबंधित था, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च

न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि मण्डल ऐसा कोई दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं कर सका, जो दर्शाता हो कि अनुसूचित संपत्ति मण्डल की है।

15. हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार करने पर, हम यह पाते हैं कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय मण्डल द्वारा दायर वाद को मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज करने के लिए आश्वस्त हुए थे कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने पक्ष में वर्ष 1980 में वाद प्रस्तुत करके डिक्री प्राप्त की, किंतु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त वाद वर्ष 1958 में प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा केवल राज्य सरकार के खिलाफ दायर किया गया था। मण्डल वादाधीन संपत्ति का, जो वाद की विषयवस्तु थी, मालिक होने का दावा करता है और, इसलिए मण्डल एक आवश्यक पक्षकार था। चूंकि मण्डल को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया तथा डिक्री केवल राज्य सरकार के विरुद्ध प्राप्त की गई थी, इसलिए वह डिक्री अधिक से अधिक राज्य के खिलाफ बाध्यकारी होगी और मण्डल के खिलाफ नहीं। उच्च न्यायालय ने इस तर्क पर विचार किए बिना कि 1958 के ओ.ऐस. 53 में पारित निर्णय मण्डल पर बाध्यकारी नहीं है, विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि केवल इस आधार पर कर दी कि 1958 के ओऐस 53 में प्रत्यर्थी संख्या 1 के पक्ष में एक डिक्री पहले से ही पारित हो चुकी है परंतु ऐसा करते समय उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को कि उसी उच्च न्यायालय द्वारा पहले भी एक निर्णय पारित किया गया था तथा प्रत्यर्थी संख्या 1

द्वारा मंदिर की भूमि पर किये गये अतिक्रमण के संबंध में तहसीलदार की एक रिपोर्ट थी, को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया। हमें केरल उच्च न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षी शक्ति के तौर पर आरंभ की गई कार्यवाही तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में तहसीलदार से प्राप्त की गई रिपोर्ट की अभिलेख पर कोई चर्चा नहीं मिली है। उच्च न्यायालय के दिनांक 24.10.1997 एवं दिनांक 21.11.1997 के आदेशों के प्रभाव एवं उन आदेशों के आशय के संबंध में भी कोई चर्चा नहीं की गई है।

16. 1950 के अधिनियम की धारा 27 की उच्च न्यायालय द्वारा जो व्याख्या की गई है, वह भी हमारी विनम्र राय में गलत थी तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचना उचित नहीं था क्योंकि उसने इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था कि धारा 27 में यह कहा गया है कि 12 अप्रैल 1922 के बाद देवस्वोम वागा या देवस्वोम पोरम्बोके के रूप में राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज या वर्गीकृत अचल संपत्तियों को देवस्वोम संपत्तियों के रूप में निपटाया जाएगा, चाहे वह देवस्वोम संपत्ति वही हो या नहीं, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा हल करने और निर्णय लेने के लिए मांग की गई थी। अभिलेख का अवलोकन करने पर हम यह पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने मण्डल द्वारा प्रस्तुत वाद को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज करने के आदेश को मुख्य तौर पर 2 आधारों पर बहाल रखा था कि 1958 के दावा संख्या 53 में पारित डिक्री, जो उच्च न्यायालय के अनुसार अंतिम

और बाध्यकारी थी तथा त्रावणकोर कोचीन हिंदू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 की धारा 27 की व्याख्या पर, जो हमारे अनुसार एक गलत व्याख्या थी, विशेष रूप से इस तथ्य के मद्देनजर कि उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि निगम इस बात का सबूत पेश नहीं कर सका कि प्रश्नगत तिथि पर संपत्ति पर उसका कब्जा था।

17. इस स्तर पर, हमें प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित वकील द्वारा उठाए गए तर्कों से निपटना और उनका जवाब देना भी आवश्यक है कि वर्तमान अपील स्वयं सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि मण्डल द्वारा दायर पूर्व की ऐसएलपी को मियाद बाहर मानते हुए खारिज की गयी थी तथा मण्डल द्वारा बनाई गई संस्था अपील प्रस्तुत नहीं कर सकती थी। यह वास्तव में सच है कि मण्डल ने 2005 की विशेष अनुमति याचिका संख्या 15250 (2005 की सीसी संख्या 6642) दायर की थी, लेकिन उक्त ऐसएलपी को मियाद के आधार पर खारिज कर दिया गया था क्योंकि उक्त ऐसएलपी मण्डल द्वारा सीमा की अवधि से परे दायर की गई थी। वर्तमान अपीलार्थी इस तथ्य के मद्देनजर एक कानूनी इकाई है कि इसका गठन मण्डल द्वारा जारी उपविधियों के अनुसार किया गया था। वर्तमान अपील दायर करते समय अपीलार्थी ने यह कहा है कि इस अपील को दायर करने में उसका हित केवल मण्डल की संपत्तियों को अतिक्रमणकारियों से बचाना है और यह देखना है कि मंदिरों और धार्मिक पूजाओं से संबंधित भूमि के

साथ छेड़छाड़ न की जाए और त्रावणकोर कोचीन हिंदू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 के प्रावधानों का, जिसका हित और उद्देश्य देवास्वोम संपत्तियों की रक्षा करना है, प्रभावी कार्यान्वयन भी किया जाए। प्रत्यर्थी संख्या 1 का यह तर्क कि अपीलार्थी के पास वर्तमान याचिका दायर करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है, गुरप्रीत सिंह भुल्लर बनाम भारत संघ (2006) 3 ऐसेसीसी 758 में उच्चतम न्यायालय के फैसले के मद्देनजर इस स्तर पर इसे उठाया या प्रचारित नहीं किया जा सकता है, जिसमें यह माना गया था कि:

> "18. इस विवाद के कारण हमें अब और हिरासत में रखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसएलपी दायर करने की अनुमति इस न्यायालय द्वारा दिनांक 06.01.2006 को पहले ही दी जा चुकी है।"

18. वर्तमान मामले में हम यह भी पाते हैं कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 27.02.2006 को एक आदेश पारित किया गया था, जब ऐसएलपी दायर करने की अनुमति दी गई थी और, इसलिए अधिकार क्षेत्र के उक्त प्रश्न को इस न्यायालय के समक्ष दुबारा नहीं उठाया जा सकता है। हम जसबीर सिंह बनाम विपिन कुमार जग्गी (2001) 8 ऐससीसी 289 में इस न्यायालय के एक अन्य फैसले का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह कहा गया था कि:

"**11.** शुरुआत में, प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति का निपटान किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 के अनुसार यह अपील उन कार्यवाही में पारित आदेश से की गई है जिसमें अपीलार्थी एक पक्षकार नहीं था और अपीलार्थी ने आदेश को चुनौती नहीं दी है जिसमें हस्तक्षेप के लिए उनके आवेदन को खारिज कर दिया गया था। यह तर्क दिया गया है कि इन परिस्थितियों में, हमारे समक्ष प्रस्तुत अपील पोषणीय नहीं है। यह आपत्ति, यह मानते हुए कि इसमें कुछ बल था, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 03.11.2000 को अपीलार्थी को विशेष अनुमति याचिका दायर करने की अनुमति दे दिये जाने के कारण, अस्तित्व में नहीं रहती है।"

19. राजू रामसिंह वसावे बनाम महेश देवराव भिवापुरक, (2008) 9 ऐसेसीसी 54, में इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"**46.** हम इस आवेदन को साधारण आधार पर खारिज कर सकते थे कि अपीलार्थी के पास कोई विधिक अधिकार नहीं है। हमने ऐसा नहीं किया क्योंकि एक संवैधानिक अदालत के रूप में हमने महसूस किया कि कानून को सही ढंग से बनाना हमारा कर्तव्य है ताकि इसी तरह की गलतियाँ

भविष्य में न हों। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के तहत इसमें निहित वरिष्ठ न्यायालयों की सामान्य शक्ति के अलावा, इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 141 और 142 के संदर्भ में संविधान निर्माताओं द्वारा एक बड़ी जिम्मेदारी दी गई है। ऐसे कई निर्णय हैं, जिनमें इस न्यायालय ने सामाजिक और/या सार्वजनिक हित के संबंध में उचित परिणाम पर पहुंचने के लिए रचनात्मक व्याख्या का सहारा लेने के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया। हमने सोचा कि यह उस प्रकृति का मामला है। हम देख सकते हैं, हाल ही में इस तरह के कानूनी सिद्धांत पर इस न्यायालय द्वारा इंडियन बैंक बनाम गोधरा नागरिक कॉप. क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड में विचार किया गया है, हालांकि, इस न्यायालय ने कानून बनाते समय अनुतोष को उचित रूप से ढाला ताकि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय हो सके।"

20. उपरोक्त स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका दायर करने की अनुमति दी गई थी, यदि हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के आदेश को बहाल नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द करना

आवश्यक है, हम इस न्यायालय में वर्तमान अपील दायर करने के अपीलार्थी के अधिकार क्षेत्र के कारण ऐसा करने में संकोच नहीं करेंगे। उच्च न्यायालय ने त्रावणकोर कोचीन हिंदू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950 की धारा 27 की व्याख्या पर एवं केवल इस तथ्य के आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया था कि पहले पारित डिक्री अपीलार्थी पर तथा मण्डल पर बाध्यकारी होगी। हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं तथा यह निष्कर्ष भी दे चुके है कि उच्च न्यायालय के उक्त दोनों दृष्टिकोण गलत हैं तथा उच्च न्यायालय द्वारा इन पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

21. राजस्व रिकॉर्ड सहित सभी प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार करने के बाद हमने पाया कि उच्च न्यायालय अभिलेख पर साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं कर पाया और उन अभिलेखों को उच्च न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जाएगा क्योंकि उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था और, इसलिए उच्च न्यायालय ने अभिलेख में स्पष्ट रूप से कानूनी त्रुटि की है।

22. इसलिए, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को रद्द करते हैं और सभी पहलुओं, विशेष रूप से रिकार्ड पर मौजूद सभी सबूतों पर नये सिरे से विचार करने के लिए मामले को उच्च न्यायालय में वापिस भेजते हैं। चूंकि मामला पुराना है, इसलिए उच्च न्यायालय से

अनुरोध है कि कार्यवाही को यथाशीघ्र निपटाया जाये। उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। तद्नुसार, उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राजेन्द्र कुमार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।